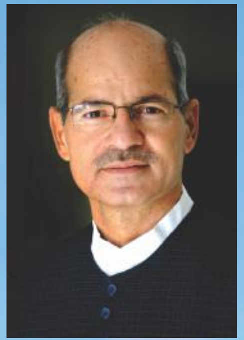

अनिल माधव दवे
सचिव
नर्मदा समग्र, न्यास

नर्मदा व तवा नदियों के पवित्र, रमणीय संगम स्थल बांद्राभान (जिला होशंगाबाद, म.प्र.) पर देश–दुनिया की नदियों की अविरलता व निर्मलता के लिए कार्य कर रहे लोग एकत्र हुए, समागम में जुटे नदी–प्रेमियों और पर्यावरणवादियों ने देश के सामने एक दृष्टि–पत्र प्रस्तुत करने का निर्णय लिया। 8–11 फरवरी, 2013 तक चले इस चिंतन में नदियों से प्रत्यक्ष रूप से जुड़े लोगों व भविष्य की पीढ़ी स्कूली बच्चों ने भी हिस्सा लिया। वहां इस समागम में सरकार थी, जनप्रतिनिधि थे व समाज था। सबने अपनी–अपनी बात रखी। वर्तमान संदर्भों को ध्यान में रख कर बाते हुईं।

उन सबका निचोड़ है यह दृष्टि–पत्र।

नर्मदा समग्र
'नदी का घर' सीनियर एम.आई.जी.–2, अंकुर कॉलोनी, शिवाजी नगर, भोपाल–462016 (म.प्र.)
दूरभाष 0755–2460754 फैक्स 0755–2553283
narmadasamagra@gmail.com ; narmadasamagra@rediffmail.com
website : narmadasamagra.org

हमारी नदियाँ

नीति, नियम व नेतृत्व

नर्मदा समग्र द्वारा आयोजित: तृतीय अंतर्राष्ट्रीय नदी महोत्सव, 2013

तृतीय अंतर्राष्ट्रीय नदी महोत्सव 2013

3rd INTERNATIONAL RIVER FESTIVAL 2013

8-10 फरवरी 2013

नर्मदा तवा संगम, बान्द्राभान, जिला होशंगाबाद, म.प्र.

हमारी नदियाँ

नीति, नियम व नेतृत्व

अनिल माधव दवे

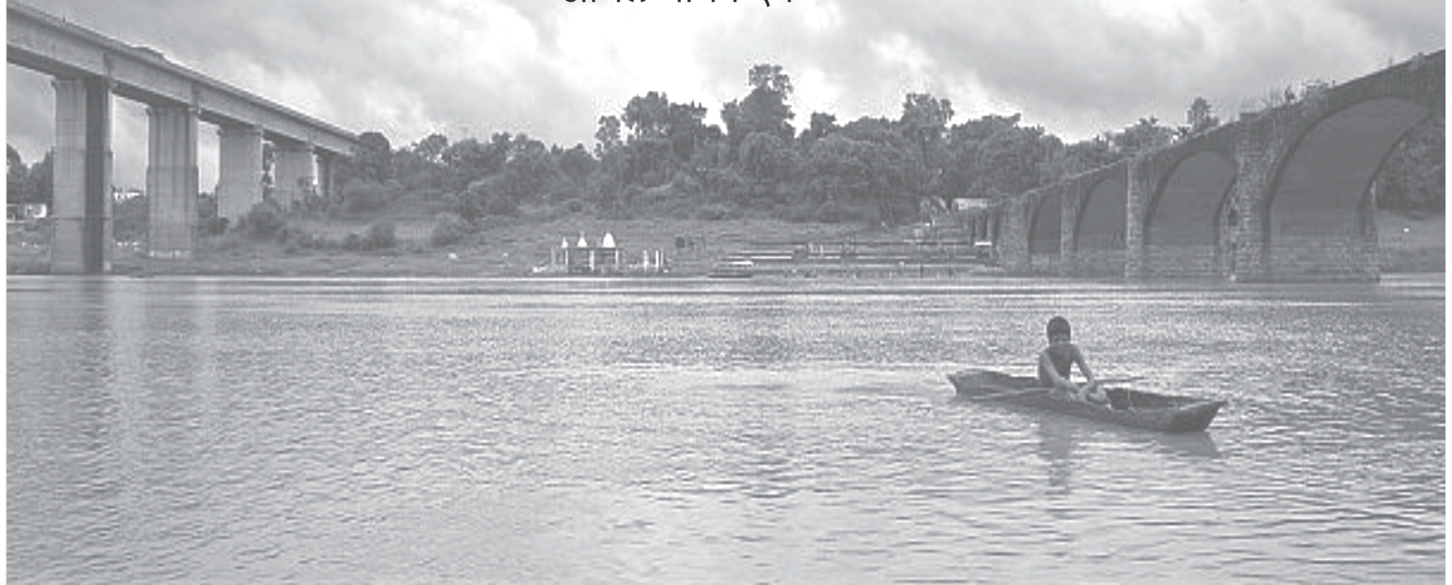

बांद्राभान दृष्टि-पत्र

नर्मदा समग्र द्वारा आयोजितः
तृतीय अंतर्राष्ट्रीय नदी महोत्सव, 2013

हमारी नदियाँ

नर्मदा व तवा नदियों के पवित्र, रमणीय संगम स्थल बांद्राभान (जिला होशंगाबाद, म.प्र.) पर देश–दुनिया की नदियों की अविरलता व निर्मलता के लिए कार्य कर रहे लोग एकत्र हुए, समागम में जुटे नदी–प्रेमियों और पर्यावरणवादियों ने देश के सामने एक दृष्टि–पत्र प्रस्तुत करने का निर्णय लिया। 8–11 फरवरी, 2013 तक चले इस चिंतन में नदियों से प्रत्यक्ष रूप से जुड़े लोगों व भविष्य की पीढ़ी स्कूली बच्चों ने भी हिस्सा लिया। वहां इस समागम में सरकार थी, जनप्रतिनिधि थे व समाज था। सबने अपनी–अपनी बात रखी। वर्तमान संदर्भों को ध्यान में रख कर बाते हुईं। उन सबका निचोड़ है यह दृष्टि–पत्र। यह प्रारूप है। आप भी अपनी बात कह सकते हैं। कृपया इसे और समृद्ध, सार्थक व व्यवहारिक बनाने में अपना योगदान देने का कष्ट करें।

भारत में नदियों को सिर्फ उनकी जलराशि के कारण ही नहीं पूजा जाता वरन् माना गया कि प्रत्येक नदी एक सभ्यता व संस्कृति की जननी है। अगर देश के करोड़ों लोग ऐसा मानते हैं तो सिर्फ अंधविश्वास के कारण नहीं वरन् इसलिए क्योंकि उनकी आस्था व जीवन इनसे परोक्ष व अपरोक्ष रूप से जुड़े हुए हैं।

अपने–अपने इलाकों की भौतिक समृद्धि में अपनी नदियों के योगदान के प्रति हम कृतज्ञ हैं। पर्यावरण व जैव विविधता में उनके योगदान से खूब परिचित हैं। उन्हें जीवनदायिनी मानते हैं। लेकिन गत 50 वर्षों में समय के साथ बहते–बहते शक्तिविहीन हो चली हैं ये नदियां। बेचारी। बेबस। हम में से बहुतों को नदियों के इस वर्णन पर आपत्ति हो सकती हैं। लेकिन हम शतुर्मुर्ग की तरह रेत में सिर गड़ाए नहीं बैठ सकते। हमारा दुर्भाग्य है कि यह कडवा सच आज की वास्तविकता है।

नदियों के साथ आज जो खिलवाड़ हो रहा है उस पर वर्तमान पीढ़ी, बुद्धिजीवी, नीति निर्माता आदि चुप हैं। हम यह मान सकते हैं कि शायद अनमनस्कता के कारण ऐसा हो रहा है। लेकिन सचमुच देखा जाए तो यह दृष्टि–दोष है। नदियों को एक संपूर्ण सभ्यतागत इकाई मानने के बजाए, उन्हें दो किनारों के बीच सिमटी हुई जलप्रदाय इकाई के रूप में देखना और उसी के अनुसार नीतियां बनाना आज का प्रचलन है। लेकिन योजनाकारों को समझाने के प्रयास से पहले हमें भी यह समझना होगा कि नदियों के आस–पास रहने वाले जन का अपना समाजशास्त्र है। नदी का अपना अर्थशास्त्र भी है। वह आजीविका, उत्पादन, आय–व्यय, ऊर्जा व आर्थिक उन्नति के रहस्यों को अपने में छुपाये हुए हैं। भारतीय नदियों के तट आध्यात्मिक धर्म साधना के केन्द्र हैं। जो नदियों को दिव्यता के भाव से पूर्ण करते हैं।

हजारों वर्षों से निरन्तर चिन्तन व प्रयोगों ने भारत में एक सहअस्तित्व की संस्कृति का विकास किया। सृष्टि को जीवन्त व परमात्मा की अभिव्यक्ति माना। इसलिए भारत में प्रकृति सदा ही पवित्र और संरक्षणीय मानी गई। प्रकृति को समझने, उसी के नियमों के अनुरूप अपना संसार खड़ा करने और उसके साथ सामंजस्य में भी अपनी सभ्यता का उत्कर्ष देखने का अभ्यास किया गया। इसलिए भारत ने पर्यावरण की दृष्टि से विश्व की सबसे उन्नत चिन्तन व सभ्यता विकसित की। आज जिस सभ्यता और सोच का बोझ पूरा विश्व ढोने को विवश है उस पश्चिमी सभ्यता की दृष्टि में प्रकृति परमात्मा व मानव के बीच कोई संबंध नहीं है। प्रकृति के विभिन्न स्वरूप पहाड़, जंगल, नदी, तालाब, पशु–पक्षी जैसे विविधता के इस विशाल संसार में कोई सीधा परस्पर निर्भर जीवन व संवाद नहीं है। इसलिए वहां प्रकृति से सामंजस्य बैठाने की नहीं, उसे नियंत्रित करने और उसके शोषण के द्वारा अपना वैभव बढ़ाने में ही सभ्यता का उत्कर्ष देखा गया। इसी ने आज पूरी दुनिया के सामने एक संकट पैदा कर दिया है। यह संकट जितना पर्यावरण के समक्ष है उतना ही मानवजाति के समक्ष भी है क्योंकि मनुष्य प्रकृति का ही अंग है। प्रकृति की शक्ति और उसके वैभव के सामने मानव अस्तित्व बहुत छोटा है। नियंता बनने की उसकी कामना केवल अहंकार ही है।

भारत में प्रकृति के सभी अंगों को दिव्य मानते हुए सदा उनकी अभ्यर्थना की जाती रही है। अदृश्य विश्वशक्ति (उसे किसी भी नाम से पुकारे) का व्यक्त रूप ही प्रकृति है। उसके मूल अवयव पंचभूत– जल, वायु, अग्नि, पृथ्वी, और आकाश सभी भौतिक वस्तुओं के आकार का कारण हैं। अपने स्थूल रूप से उन्होंने हमारे जिस संसार की रचना की है, उसकी पवित्रता की रक्षा का दायित्व हमारे पूर्वजों ने सदा स्वीकार किया और अपनी सभी व्यवस्थाएं उसके अनुरूप ही बनाईं। इसलिए भारत सदा शस्य से आवृत, सदानीरा नदियों से परिवेष्ठित, अमृतरूपी अन्न और औषधियों का आगार और सभी तरह के जीव जंतुओं से संपन्न बना रहा है। लेकिन पिछले सौ–डेढ़ सौ वर्ष में हमने अपने इस प्राकृतिक वैभव को एक विदेशी सभ्यता के प्रभुत्व में नष्ट होने दिया है। आजादी के बाद देश के शासन–प्रशासन को चलाने वाले छोटे–बड़े जो केन्द्र बने वहां भी कार्य करने वाले यूरोपीय सोच व व्यवहार से मुक्त नहीं हो पाये। संसाधन, समय व श्रम का पारावार नुकसान कर हमनें भारत को गलत निर्णयों का देश बना दिया है। जैसे आज के समय ऐसे स्थान की खोज कठिन है जहां खड़े होकर चारों तरफ नजर घुमाने पर दर्शनकक्षा में कोई पॉलिथीन या प्लास्टिक न दिखाई दे। वैसे ही हर गांव, शहर गलत परियोजना व योजना के कब्रस्तान बन गये हैं। अपने इस अपराध को हम जितना शीघ्र

पहचान कर उसका मार्जन करेंगे, उतना ही हम अपने और अपनी सभ्यता के भविष्य को सुनिश्चित कर पाएंगे।

भारतीय सभ्यता को यदि नदी सभ्यता कहा जाए तो कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी। भारत जैसा भाग्यवान, इस संसार में और कोई देश नहीं है, जिसके सर्वाधिक विस्तार में सुजल से भरी नदियों का जाल बिछा हुआ हो। भारत के सभी गौरवशाली नगर नदियों के तट पर ही बसाए गए। परिवार व्यवस्था से सजा समाज इसके किनारे पला–बढ़ा। मौलिक व आध्यात्मिक उपब्धियों के उसने नये–नये आयाम छुए। नदियां ऋषियों, संतो, व सन्यासियों की तपःस्थली रहीं हैं, उनकी साधना का केन्द्र रही हैं। नदी के अविरल और अनंत प्रवाह में हमारे मनीषियों ने सृष्टि प्रवाह की झलक देखी है और चित्त के निरोध की अवस्था प्राप्त की। भारत की जिन प्रमुख नदियों जैसे – गंगा, यमुना, ब्रह्मपुत्र, सिन्धु, नर्मदा, गोदावरी, कृष्णा और कावेरी को साहित्य में स्थान–स्थान पर गौरवगान हुआ है। ये तो भारत की सहस्त्र अमृतमयी धाराओं का मुख मात्र है। वस्तुतः वे शुद्ध निर्मल जल से भरी शिराओं की तरह भारत माता के संपूर्ण शरीर में प्रवाहमान हैं और भारतभूमि को सदा सिंचित व पोषित करती रहीं हैं। भारत की सभी नदियाँ श्रीगंगा का प्रतिरूप हैं जो देवोपगा हैं– अर्थात देवलोक से अवतरित हुईं हैं। देवोपगा गंगा का आख्यान नदी मात्र की दिव्यता का आख्यान है। वे हमें पवित्र करती हैं। वे चाहे हिमालय से निकली हों, विंध्य से या सह्याद्रि से अथवा मेघप्रसूत जल को ग्रहण करके अपने से बड़ी किसी जलधारा में विलीन होने के लिए प्रस्तुत हुई हों सभी पुण्यदायी और कल्याणी हैं।

ब्रिटिश राज के दौरान 1810–11 में फ्रांसिस बुकानिन ने भारत की नदियों का विस्तृत सर्वेक्षण किया था। उसी समय से इन नदियों के बारे में शासकों की दृष्टि बदल गई। वह उन्हें केवल उपभोग करने की दृष्टि से देखने लगे। राज्य ने उनकी पवित्रता की रक्षा का, उनके उद्‌गम व जलग्रहण क्षेत्रों की सुरक्षा का दायित्व छोड़ दिया। उसे नदी में केवल जलराशि ही दिखाई दी और उसका तत्काल व ज्यादा से ज्यादा उपभोग कैसे किया जा सकता है यही उसकी जिज्ञासा व चिंता का विषय हो गया।

तब से अब तक सभी नामचीन नदियों पर बांध बन गए हैं। वर्षा ऋतु के अतिरिक्त सामान्यतः उनमें प्रवाह नहीं रहता। जलग्रहण क्षेत्रों में औद्योगिक इकाईयों ने निर्बाध प्रदुषणयुक्त रसायन छोड़ा है। पेड़–पौधे जो वर्षाकाल में जल संजोकर साल भर नदियों को पूरते रहते हैं। वे जंगल अंधाधुंध अवैध कटाई की बली चढ़ गये। परिणाम यह हुआ कि देशभर में हजारों छोटी नदियां दम तोड़ चुकी हैं। जिन नदियों को हम सुखा नहीं पायें उन्हें हमने बहते सड़ान मारते गंदे नालों में बदल दिया है। देश का हरेक नागरिक अपने आसपास कहीं न कहीं इस सूखते व सड़ते विनाश को प्रत्यक्ष देख सकता है।

नगरीय आबादी के विस्तार ने नदियों का संकट और बढ़ा दिया है। वह नदी का जल लील कर अपना गंदा पानी उनमें उडेल देती है। लगभग सभी नदियां उसके इस दुष्कृत्य के कारण कूड़े के ढेर में परिवर्तित हो गई हैं। जिस मथुरा के निवासी अपना दिन ही यमुना के जल के आचमन से आरंभ करते थे, वे अब यमुना में गंदे पानी की दुर्गंध सहने के लिए अभिशप्त हैं।

विश्व आधुनिक सभ्यता में कहीं और नदियों, सरोवरों, वनों और पर्वतों के प्रति ऐसा पूज्य भाव नहीं दिखाया जाता जैसा अपने भारत में। लेकिन आज विश्व में और कहीं नदियों की इतनी दुर्दशा व उपेक्षा दिखाई नहीं देती जितनी भारत में। ब्रिटिश राज के दौरान नदियों के प्रति दिखाई गई उपभोगवादी नीति समझी जा सकती हैं। पर स्वतंत्रता के पश्चात हमने अपनी नदियों के प्रति उससे भी ज्यादा स्वार्थी व कृतघ्नतापूर्ण व्यवहार दिखाया है। हमने उन्हें सदानीरा बनाए रखने, अपने देशवासियों के धार्मिक और सभ्यतागत आचारों की रक्षा करने और उनके जल से पूरे देश को परिपूरित रखने के लिए पर्याप्त नियम नहीं बनाए, जो थोड़े बहुत थे उसका भी कड़ाई से पालन नहीं करवाया।

देश में अब तक नदियों को लेकर जो भी विचार–विमर्श हुआ वह उनकी जलराशि के उपयोग पर ही केन्द्रित रहा है। पर्यावरणवादियों ने भी केवल उसके भौतिक प्रदूषण की चिंता की है। इसमें संदेह नहीं कि अपनी नदियों को समाज के भौतिक जीवन की आवश्यकताओं से जोड़े बिना उनकी रक्षा नहीं की जा सकती। लेकिन उसके लिए हमें कड़ी मर्यादाएं तय करनी होगी। भारत की सभी जलधाराओं और जलाशयों की रक्षा और संवर्धन को वरीयता दी जानी चाहिए। यह प्रयत्न होना चाहिए कि हमारी सभी नदियां सदा प्रवाहमान रहें। वे पूरे देश की संपत्ति हैं। किसी एक जिले अथवा राज्य की नहीं। इसलिए उसके जल पर पहला अधिकार उद्‌गम से संगम तक किनारे बसने वाले सभी का है।

आवश्यक व्यवस्थाएं बनाने का दायित्व विधायिकाओं का है। संसद और विधानसभाओं में इस संबंध में कड़े नियम बनाए जाने चाहिए। राज्य पर उनके कड़ाई से पालन का सामाजिक दबाव खड़ा करना होगा। इसके अतिरिक्त नदियों और जलाशयों की पवित्रता और उनके जलग्रहण क्षेत्र की रक्षा का दायित्व सामाजिक पंचायतों को सौंपा सार्थक रहेगा। उसके पास पर्याप्त साधन हो, इसकी व्यवस्था कार्यपालिका में करना होगी। इन सबके लिए समुचित जन जागरण अपेक्षित है। नदियों को केन्द्र बनाकर खड़े किए गए परंपरागत धार्मिक–सामाजिक आचारों और उत्सवों को पुनर्जीवित करना होगा। यह सब तभी संभव है जब हमारा राजकीय तंत्र प्रकृति के प्रति अपनी दृष्टि बदले और समाज अपनी व्यवस्थाओं के प्रति अधिक जागरूक व आग्रही हो। हमें याद रखना चाहिए कि व्यक्तिगत रूप से हमारी व सामुहिक रूप से हमारे समाज की पवित्रता

नदियों की पवित्रता से जुड़ी है। अपनी नदियों को निर्मल करके ही हम भारतीय सभ्यता की पवित्र धारा को स्वच्छ रख सकते हैं।

यह दृष्टि–पत्र उसी दिशा में एक कदम है। हमें एक रोडमैप तैयार करना है। उसके क्या–क्या अवयव हों, यह तय करना है। हमारी नदियां कैसे अविरल, निर्मल बहती रहें इसकी चर्चा करनी है। पर सभी कुछ सरकार करेगी, यह अपेक्षा भी नहीं करनी है। समाज की क्या जिम्मेदारियां होंगी, यह भी सोचना है। बाजारवाद के चंगुल से उन्हें कैसे बचाए रखना है, इसकी रणनीति भी बनानी होगी।

यह रणनीति बनाते समय हमें ध्यान रखना होगा वह देशानुकूल हो तो युगानुकूल भी हो। हमारी आध्यात्मिक धरोहर के प्रति संवेदनशील हो तो भौतिक आवश्यकताओं के भी अनुकूल हो। इसके वैज्ञानिक आधार तय करने होंगे। भारतीय नदियों के संरक्षण की कार्ययोजना के तीन प्रधान अवयव हो सकते हैं –

1. नदी नीति

2. नीति के नियम

3. नियम क्रियान्वयन हेतु नेतृत्व

नदी नीति

नदियों के बारे में राष्ट्रीय स्तर पर एक समग्र नीति की आवश्यकता है। बेशक, इसमें नदियों के भौतिक पक्ष पर विस्तार से विचार और समावेश करने की जरूरत है, लेकिन इसमें किसी देश या अन्य अंतर्राष्ट्रीय संगठन की नकल करके ही नीति नहीं बनाई जा सकती। भारत में नदी नीति बनाते समय नदियों को एक पूरी प्राकृतिक इकाई के रूप में ही देखना होगा। उसके भौतिक पक्ष की समस्याओं का निवारण सिर्फ भौतिक साधनों से ही किया जा सकता है, किन्तु अगर यही एक मात्र दृष्टि अपनाई गई तो हम एक दुष्चक्र में फंस कर रह जाएंगे। श्रेष्ठतर तो यही रहता कि समाज आत्मानुशासन से नदियों व जल के संरक्षण में जुटे। लेकिन दुर्भाग्य से भारत के नीति नियम कर्तव्य प्रधान होने की तुलना में अधिकार प्रधान है। अतः कुछ कठोर नियमों की आवश्यकता है।

निम्न कारकों के बारे में एक नीति की तत्काल आवश्यकता है :–

- नदी की एक प्रमुख धारा सदा प्रवाहित रहे।

1. नदी के उद्गम क्षेत्र का 1 से 5 कि.मी व्यास का क्षेत्र संरक्षित किया जाए।
2. नदी की कुल लम्बाई का प्रारम्भिक 1/3 भाग उसके विकास का प्रथम सोपान है। अतः सिंचाई, बिजली, उत्पादन आदि हेतु निषेध हो।[1]
3. जल ग्रहण क्षेत्र में वनों का संरक्षण व कटाई पर पूर्ण प्रतिबन्ध।
4. बांस व घास जैसी विभिन्न प्रजातियों से भूमि क्षरण व किनारे के कटाव को रोकने की पहल।
5. नदी के जलग्रहण क्षेत्र में प्राकृतिक/जैविक कृषि का आग्रहपूर्वक विस्तार व रसायनिक कृषि को हतोत्साहित करना।
6. नदी तल में होने वाली कृषि में सभी प्रकार के रसायनिक खाद व दवाईयों पर पूर्ण प्रतिबंध।
7. नदी से पानी लेने वाली सभी संस्थाओं और समाज को प्रत्युत्तर से नदी संरक्षण के कार्य में सहभागीता करे अर्थात प्रत्यक्ष कार्य में भूमिका हो। पैसा या अन्य संसाधन से क्षतिपूर्ति का मार्ग ठीक नहीं। अतः लिए गये पानी के अनुपात में सहभागी बनना।

1. अर्थात निर्माण, खुदाई, जंगल कटाई, बसांहट इत्यादि कार्यों के लिए भाग पूरी तरह प्रतिबंधित है

8. भारत की केन्द्र व राज्य सरकारों के विभिन्न विभाग नदी व जल पर कार्य करते हैं इनमें समन्वय का सर्वथा अभाव है। अतः नदी के सभी आयामों पर विचार व कार्य करने वाली एक एकीकृत इकाई बने जिसके निष्कर्षों का पालन अन्य विभागों के लिए बाध्यकारी हो।

9. नदियों के नियमित स्वास्थ्य परिक्षण के लिए एक नदी आर्युविज्ञान संस्थान बने जो नदियों के स्वास्थ्य का प्रतिवर्ष परिक्षण कर प्रतिवेदन प्रस्तुत करें। इसके रोग निदान के लिए आवश्यक पथ्य औषधी (नदी संदर्भ में) का सुझाव व आदेश दें।

10. पानी के स्थानान्तरण पर आवश्यक नीति बने। अनिवार्य होने पर ही इसे किया जाए। महानगर व छोटे–बड़े उद्योग पहले अपने पास उपलब्ध जल का योग्य संरक्षण व भण्डारण करें तत्पश्चात् अनिवार्य होने पर ही जल को एक स्थान से दूसरे स्थान पर स्थानान्तरित करें।

11. पानी के प्रयोग में मितव्ययता व अनुशासन को पहले ऐच्छिक व बाद में नियमों के तहत अनिवार्य करना।

12. बिजली की तरह जल का प्रयोग भी सशुल्क हो। पानी लेने की गणना हेतु प्रभावी व्यवस्था हो यह भूजल, तालाब, नदी, कुओं जैसे सभी जलस्रोतों से पानी लेने पर लागू हो।

13. नदी के जलग्रहण क्षेत्र व प्रत्यक्ष नदी से जल लेने व उसके प्रयोग करने में भी अनुशासन हो। उपयोग के अनुपात में इस जल का शुल्क वसूला जाए।

14. वनों के विस्तार में खेत व मेढ़ का प्रयोग हो इस पर उगने वाले वृक्ष व उसकी पैदावार का स्वामित्व खेत मालिक का रहे। किसान की मेढ़ पर उगे वृक्षों को अन्य पैदावार की तरह परिपक्व होने पर उसे काटने व बेचने की किसान को स्वतंत्रता रहे।

15. जलग्रहण क्षेत्र की पड़त भूमि पर वनों में निवास करने वाली जनजाति के युवकों को सामाजिक वानिकी जैसी योजनाओं के अन्दर वृक्षारोपण हेतु दी जाए। जिसकी पैदावार व लकड़ी पर उसका अधिकार रहे व भूमि पर स्वामित्व सदैव सरकार के पास रहे।

16. नदी में किसी भी प्रकार का उपचारित अथवा अनुपचारित प्रदूषित जल न मिलाया जाए। किसी भी रूप में नदी प्रदूषित जल बहाने का माध्यम नहीं है। इसके अतिरिक्त किसी नदी में कहीं भी शहर या औद्योगिक इकाइयों का कचरा बहाने पर प्रतिबंध। जहां इसका उल्लंघन हो वहां दण्डात्मक कार्यवाही तत्काल हो।[2]

17. बांधों के सम्बन्ध में उसके आकार–प्रकार पर विचार करने से पहले पूर्व के बनाये गए (औसत 25 वर्ष पुराने) बांधों का सामाजिक व आर्थिक अंकेक्षण किया जाये। इसका लाभ–हानि खाता बनाया जाए। इन दावों का मूल्यांकन किया जाए जो उस बांध को बनाते समय योजना में किये गए थे। उसी के बाद आगे की दिशा तय की जाए।

18. छोटे बांधों के (नदी के औसत बाढ़ के बिन्दु से 30 प्रतिशत कम ऊंचाई के) निर्माण का आग्रह।

19. नदियों से जल ले जाने या उसके प्राकृत स्वरूप में किसी प्रकार का परिवर्तन करने से पूर्व अन्य उपलब्ध विकल्पों का मूल्यांकन योजना का प्रथम भाग हो।

20. नदियां सार्वजनिक धरोहर हैं, इसका निजीकरण किसी भी रूप में नहीं किया जाय।

21. नदियों को जोड़ने का विषय चर्चा और वाद–विवादों तक सीमित है। इस पर कोई भी अंतिम नीतिगत निर्णय लेने से पूर्व एक से अधिक राज्यों से बहने वाली अथवा एक ही राज्य की दो नदियों को जोड़ा जाए। कुछ वर्षों (पांच से 10 वर्ष) तक उससे होने वाली लाभ–हानि का मूल्यांकन किया जाए। दावों और वादों से प्रत्यक्ष होने के बाद आगे विचार हो।

22. नदी में प्रदूषण रोकने की प्रथम जवाबदारी ग्रामीण क्षेत्रों में ग्राम पंचायत व नगरी क्षेत्र में स्थानीय निकायों की हो।

2. ऐसा प्रत्येक कार्य जिससे नदी की प्राकृतिक अवस्था खराब होती है।

नियम

नियम नीतियों के क्रियान्वयन का संवैधानिक मंत्र है जो क्रियान्वयन तंत्र की निर्देशिका है। नियमों की वाक्य रचना छोटी व सरल हो। अच्छी नियमावली वही है जिसे समझने के लिए विशेषज्ञ की आवश्यकता न रहती हो। सामान्य बुद्धि से जो समझी जा सकती हो। अर्थ पूरी तरह स्पष्ट हो। नियमों का पालन न करवाने वालों की जवाबदेही निश्वित हो । जवाबदार व्यक्ति या संस्था अगर नियमों का पालन करवाने में असमर्थ रहे उस पर भी कार्यवाही व सजा का प्रावधान निर्धारित हो। नियम पालन व उसमें असफल होने पर सजा देने की समय सीमा निश्चित हो। पालनकर्ता द्वारा कर्तव्य पालन में असफल होने पर उसे निश्चित समय–सीमा में सजा सुनाई जाये। सजा का पालन भी तत्काल लागू हो।

- भारतीय संविधान के अनुच्छेद 48–ए में राज्य पर यह जिम्मेदारी डाली गई है कि वह देश के पर्यावरण संरक्षण और संवर्धन के लिए हर संभव प्रयास करेगा। साथ ही जंगल व वन्य–जीवन का दायित्व भी उसी पर रहेगा।
(संविधान संशोधन कर इसमें नदियों को भी जोड़ा जाये)
- राज्य के अतिरिक्त, संविधान के अनुछेद 51 ए(जी) के तहत देश के नागरिकों का मूल कर्त्तव्य निर्धारित है कि वे जंगल, झील,नदी,वन्यजीवन सहित सारे प्राकृतिक पर्यावरण के संरक्षण व संवर्धन तथा सभी जीवों के प्रति दया रखें।
- जहां अनुच्छेद 48ए राज्य, के लिए संविधान के नीति–निर्धारक सिद्धांतों का हिस्सा है, वहीं 51ए(जी) मूल कर्तव्यों के तहत आता है।
(नदी महोत्सव 2013 बांद्राभान की यह सभा मांग करती है कि ये दोनों अनुच्छेद संविधान की मुख्यधारा के हिस्से हों ताकि इनका उल्लंघन करने पर कोई भी व्यवस्था,संस्था अथवा नागरिक, सभी को दण्डित किया जा सके)
- 1974 के जल प्रदूषण नियंत्रण कानून का मुख्य उदेश्य पानी की गुणवत्ता को बनाए रखना और जहां वह नष्ट हुई हो, उसे पुनः गुणकारी बनाना है। लेकिन नदियों में पानी की गुणवत्ता का क्या पैमाना हो, यह उस कानून में कहीं परिभाषित नहीं किया गया है। कानून बने 39 वर्ष हो गए है, लेकिन यह नहीं कहा जा सकता कि कोई भी नदी दस कानून के कारण साफ हुई हो।
- 1986 में बना पर्यावरण संरक्षण अधिनियम स्वयं में एक बहुत शक्तिशाली कानून हैं। लेकिन यह भी नदियों के मामले में अपेक्षित कानूनी संरक्षण नहीं दे पाता है।
- ग्रीन ट्रिब्यूनल का प्रयोग अभी प्रारम्भिक अवस्था में है, किन्तु निश्चित ही वह एक आशा जगाता है। इसके सार्थक उपयोग के लिए जल प्रबोधन अनिवार्य है। वैसे समय ही इसकी सार्थकता सिद्ध करेगा।
नदी के उद्‌गम से संगम तक के दोनों और फैला उसका जो जलग्रहण क्षेत्र है, वहं स्वयं में नदी का शरीर है। जब नदी का समग्र विचार हो तो उसके सम्पूर्ण क्षेत्र में जो प्रमुख शासकीय या अशासकीय संस्थाए अपनी भूमिका रखती हैं उनकी भी रीति–नीति व कार्यपद्धति पर विचार आवश्यक है। उनमें से प्रमुख घटक इस प्रकार है।

1. वन
2. भूमि (राजस्व)
3. आवास
4. यातायात
5. पर्यटन
6. जनजाति
7. धर्मस्व
8. उद्योग
9. कृषि
10. खनिज खनन
11. न्याय कानून
12. पड़ोसी देश विश्व
13. पर्यावरण जलवायु परिवर्तन

1. विभिन्न विभागों का जो भाग नदी से सम्बन्ध रखता है उसके नियमों के महत्वपूर्ण बिन्दू होते है वे केवल शासन के ही नहीं होते वे पारिवारिक, सामाजिक व धार्मिक भी होते। इन सभी में नदी संरक्षण के नियम हैं। भी और नहीं भी। अतः उनका स्पष्ट निर्धारण होकर प्रचार–प्रसार व पालन का आग्रह किया जाये।
जिन नियमों का व्यक्ति या समाज स्वेच्छा से पालन करता है वे कर्तव्य की श्रेणी में आते है जिन नियमों का दंड अथवा सजा का भय दिखाकर पालन करवाया जाता है वे कानून अथवा आदेश की श्रेणी में आते हैं। विभिन्न में जो नियम नदी जलग्रहण क्षेत्र के रक्षण हेतु बने हैं उनका कठोरता से पालन करवाया जाए। जहां नियमों का अभाव हो वहां नये नियम बनाए जाये।

वन विभाग

वन नदी के बैंक हैं। वे वर्षा का जल संचय कर उसके धीरे–धीरे रिसने के कारण हैं। साथ ही वे वर्षा को भी आकर्षित करते हैं। कछारों से जो जल भूतल के ऊपर नीचे से बहता हुआ आता है उसमें वानस्पतिक व औषधीयुक्त गुण घोलने का काम भी वन ही करते है। ये भूमि के कटाव को भी रोकते हैं। इस विभाग के कुछ बिन्दुओं पर नियम व कार्य अनिवार्य हैं जैसे –

- वनों की कटाई 100 प्रतिशत प्रतिबंधित हो।[1]
- वनोपज पर पहला हक वनवासियों का हो।[2]
- वन के विविध पेड़ों की प्रजातियों को संकुल हैं, कहीं एक–दो श्रेणी के वृक्ष ज्यादा मात्रा में हो सकते हैं। उनकी इस विविधता को एकरूपता में (एक प्रजाति के पेड़) में बदलना गलत है।
- वनों के स्वास्थ्य को ठीक रखने के लिए वन्य जीवों की बड़ी भूमिका है। एक दृष्टि से वे परस्पर जीवी हैं। उनमें कुछ विशेष जाति के जानवरों की चिन्ता अधूरा चिन्तन है। वस्तुतः वन संसार में छोटी–बड़ी सभी प्रजातियों की अपनी–अपनी भूमिका है अतः सभी के रक्षण हेतु नियम बने।
- वनों के पहले रक्षक वहां निवास करने वाली जनजातियां हैं। वे सदियों से वहाँ रहते आये हैं। वन या वन्यजीव संरक्षण के नाम पर उनका विस्थापन पाश्चात्य चिन्तन का परिणाम है। वे वनों की अवैध कटाई व लकड़ी चोरों के विरुद्ध वनरक्षक की भूमिका निभाने में सक्षम हैं। उनके वनों में निवास करने व उसके संरक्षण–संवर्द्धन में भूमिका निभाने हेतु नियम बने।
- वनों के क्षेत्रफल व घनत्व का प्रतिवर्ष एक निर्धारित माह में उपग्रह एवं अन्य वैज्ञानिक माध्यमों प्रत्यक्ष गणना के नियम बने। वन विस्तार के होने वाले दावों को हर वर्ष परखा जाए व उसके तथ्यों को प्रदेश व देश की जनता के समक्ष रखा जाए।
- वनों की परिभाषा में जो श्रेणीयां हैं (छोटे घास का जंगल, झाडियों का जंगल, छोटे–बड़े पेड़ों का जंगल) वे भ्रम पैदा करती हैं। इसको स्पष्ट करने व उसकी गणना के नियम बनें।

राजस्व

नदी जलग्रहण क्षेत्र में सामान्यतः चार श्रेणीयों की भूमि आती है – (1) नीजी स्वामित्व (2) वन–भूमि (3) राजस्व भूमि (4) पंचायत/नगरीय क्षेत्र की भूमि। भौगोलिक दृष्टि से दो प्रमुख श्रेणीयां है पहाड़ी व समतल भूमि। सभी प्रकार की भूमि का स्वरूप व मनुष्य का उससे व्यवहार भिन्न है। अतः नदी स्वास्थ्य को ध्यान में रखते हुए उनके व्यवहार के नियम होना चाहिए।

- निजी स्वामित्व की भूमि का बड़ा हिस्सा कृषि कार्य में लाया जाता है। प्रतिवर्ष जुताई करने से उसकी सतह नरम हो जाती है जो वर्षा के समय कटाव व मिट्टी के बहाव का कारण बनती है।
- खेत का पानी खेत में का नारा जहां खेत में आन्द्रता को लम्बे समय तक बनाये रखना वहीं ढलान वाले क्षेत्र में एक छोटा तालाब भी बन जाता है, जिसका अतिरिक्त पानी पत्थर की मेढ़ के ऊपर से बहकर आगे चला जाता है। यह मिट्टी के बह जाने की प्रक्रिया को बड़ी मात्रा में रोकता है।[3]
- राजस्व भूमि का बड़ा हिस्सा पड़त भूमि के रूप में रहता है। उसका भविष्य की किसी योजना में प्रयोग होने तक लकड़ी की पैदावार में प्रयोग करने से रोजगार व पैदावार दोनों प्राप्त होगी मिट्टी का कटाव भी रुकेगा।
- पंचायत या नगरीय क्षेत्र की भूमि का अधिकतम प्रयोग आवास व भवन निर्माण के लिए होता है। भूमि की अधिकांश सतह कांक्रीट, सीमेंट व डामर से पक्का करने में जाती है। वह पानी को भूमि में जाने से रोकता है। आवास में होने वाली गतिविधियां शौचालय, स्नानगृह, भोजनालय व साफ–सफाई के काम में प्रयुक्त होने वाले रसायनों के कारण धरती के अंदर का भाग निरन्तर प्रदूषित हो रहा है। वर्षा का जल धरती में पहुंचाने की (Water Recharge) योजना भी जन अभियान नहीं बन सकी। वर्षा का जल वापस धरती में पहुंचाने की योजना परवान नहीं चढ़ सकी। इन सभी के सम्बन्ध में नियमों का निर्धारण अनिवार्य है।
- भारत में आज भी भू–लेखन का कार्य पुरानी पद्धति से होता है उसे उपग्रह, संगणक व वैज्ञानिक पद्धति से कर अगर आलेख बनाए जाये तो प्रतिवर्ष भूमि प्रयोग में होने वाले परिवर्तन व उसके नदियों

पर होने वाले प्रभाव का अध्ययन हो पाएगा। इस सम्बन्ध में कठोरता पूर्वक नियमों का निर्धारण व क्रियान्वयन अनिवार्य है।

---

1. फर्नीचर, भवन, निर्माण, ईंधन व अन्य कार्यो में जहाँ लकड़ी का प्रयोग होता है वहाँ उसका प्र्याय ढूंढ़ने के लिए, अनुसंधान को बढ़ाना एवं प्रचलित हो चुके पर्यायों के प्रयोगों को गति देने का कार्य भी प्रतिबन्ध के साथ किया जाय।
2. इस पक्ष पर यद्यपि अनुसूचित जनजाति और अन्य पारम्परिक वन निवासी (वन अधिकारों की मान्यता) अधिनियम, 2006 से आशा की किरण दिखायी पड़ती है किन्तु इसके सफल क्रियान्वयन से ही वनवासियों का हित सुरक्षित रह सकेगा। कमजोर प्रशासन व भ्रष्टारा इसमें सबसे बड़ी बाधा है।
3. इस सम्बन्ध में नियम बनाकर भूमि के स्वामित्व या स्वरूप में किसी प्रकार का परिवर्तन न करते हुए उसका लकड़ी उत्पादन में अस्थाई(5 से 90 प्रतिशत) प्रयोग नदी जलग्रहण क्षेत्र के स्वास्थ्य में बढ़ावा दे सकता है।

आवास व पर्यावरण

नदी किनारे की बस्तियों से निकलने वाला ठोस व तरल अवशिष्ट नदी पर सीधा प्रभाव डालता है। आवास निर्माण हेतु लगने वाली सामग्रियों के लिए पहाड़ काटे जा रहे हैं। मिट्टी की खुदाई कर ईंटे बनाई जा रही है। सीमेंट के लिए लाईम व अन्य खनिज तत्वों का खनन हो रहा है। भूमि का यह खनन बड़े–बड़े संयंत्रों द्वारा हो रहा है। खनन हेतु निरन्तर हो रहे विस्फोटों के कारण भूमि के अन्दर भी जल प्रवाह की धारा हजारों सालों से अबाध रूप से बह रही थी वे अब खण्डित हो रही है। इस सम्बन्ध में पहले उपलब्ध नियमों के पालन की ज्यादा आवश्यकता है। आवश्यक होने पर नए नियम भी बनाए जा सकते है।

नदियों के जल भराव क्षेत्र में हो रहे अव्यवस्थित निर्माण कार्यों से सख्ती से निपटने के लिये आवास व पर्यावरण विभाग को कड़े नियम बनाकर अनुपालन करवाना सुनिश्चित करना होगा।

साथ ही बढ़ते नगरीकरण के कारण भूमि की कमी के चलते निर्माणकर्ता (builders) एवं उद्योगपति तालाबों और सूखी नदियों पर अतिक्रमण करने से नहीं चूकते। नगरीय प्रशासन विभाग एवं आवास व पर्यावरण विभाग को इससे कठोरता से निपटना होगा।

यातायात (जल व थल)

- नदी में जल परिवहन पानी की गहराई पर निर्भर है। किनारे बसने वाला समाज बहुताय अपने सामने के तटों तक आने जाने के लिए नौ–परिवहन का प्रयोग करते हैं। एक से दूसरे शहर या गाँव तक नदी से जलयात्रा भारत में नहीं के बराबर है। सामान लाने ले जाने में इसका प्रयोग भी बहुत कम है। वर्तमान में जल परिवहन में प्रयुक्त होने वाली नौकाएं व उनके इंजन बहुत पुराने होते है। वे वायु व जल दोनों में प्रदूषण फैलाते है। डीजल व घासलेट वाले इंजनों का रिसाव सीधा नदी में होता है। बड़ी नौकाओं में जूठन और सभी प्रकार का कचरा नदी में ही डाला जाता है। इसमें बने शौचालयों का जल–मल भी उसी में बहाया जाता है। इन सबमें रोक के लिए स्पष्ट नियमों की आवश्यकता है।
- नदी के आसपास व उसके सम्पूर्ण जलग्रहण क्षेत्र में होने वाला सड़क यातायात भी प्रदूषण का बड़ा प्रकार है। लोग नदियों में वाहन को उतारकर उसे अन्दर–बाहर से धोते हैं। परिणाम स्वरूप उसमें लगा ग्रीस व तेल नदी में आ जाता है। इससे मध्यम व छोटे चार पहिया वाहनों की संख्या सबसे ज्यादा है। यमुना एक्सप्रेस हाईवे जैसी महत्वाकांक्षी परियोजनाएं नदियों पर क्या प्रभाव डालती है यह समय बताएगा। नदी के अंदर व उस पर होने वाली विभिन्न यातायात की गतिविधियों के संचालन हेतु नियमों का निर्धारण समय की आवश्यकता है।
- असामाजिक तत्व व बंगलादेशी घुसपैठियों ने नदियों में मछलियों का अवैध आखेट प्रारम्भ कर दिया है। बड़ी संख्या में विस्फोट के माध्यम से मछली मारते है। विस्फोट के कारण उस क्षेत्र की सभी छोटी बड़ी मछलियां मर जाती है। जिससे मछली प्रजनन का चक्र टुट जाता है। उसकी पैदावार कम होने लगती है व पानी भी प्रदूषित होता है। सामान्यतः इसमें उनकी सरकारी तंत्र के भ्रष्ट लोगों के साथ मिलीभगत रहती है।

जब सरकारी नियंत्रण वाला सीवर सीधा नदी में गिर कर उसे बुरी तरह प्रदूषित करता है तो औद्योगिक कचरे और रसायनों को उसमें गिरने से रोकने के लिए सरकार के पास नैतिक अधिकार ही नहीं रह जाता। इस संबंध में उसके नियम–कानून चाहे कितने भी ताकतवर हों, उन पर अमल इतना लचर व बिखरा हुआ है कि आज भी देशभर में हजारों औद्योगिक इकाइयां निर्बाध रूप से अपना रसायन नदियों में उडेल रही हैं।

- परिसंकटमय अपशिष्ट(प्रबंधन,हथालन एवं सीमापार संचालन) नियम, 2008 के अनुसार गैराजों, सर्विस–स्टेशन आदि से निकलने वाला अपशिष्ट तेल (spent oil) परिसंकटमय अपशिष्ट (Hazardous waste) की श्रेणी में आता है जो कि सामान्यतः भूमि अथवा जल में प्रवाहित कर दिया जाता है। इस जहरीले अपशिष्ट का सम्यक रूप से केवल अधिकृत पुनःचक्रणकर्ता (Recycler) द्वारा ही भण्डारण, परिवहन, संग्रहण एवं नष्ट करना सुनिश्चित किया जाये।

धर्मस्व

भूमि के सतही व नीचे के जल प्रवाह के साथ रही सही कसर आराधना के नाम पर पाखण्ड करने वालो ने पूरी कर दी है। कुछ उदाहरण के लिए प्लास्टिक के दीयों से दीपदान। आटे या मिट्टी के दीये उपभोक्तावाद की भेंट चढ़ गए हैं। गणपति, दुर्गा पूजा व ताजीयों के निर्माण में प्लास्टर ऑफ पैरिस, रसायनिक रंगों व अघुलनशील वस्तुओं का प्रयोग होने लगा है। महाराष्ट्र की कुछ नगर निगमों व गुजरात की राज्य सरकार ने प्लास्टर ऑफ पैरिस से बनी मूर्तियों पर पूरी तरह प्रतिबन्ध लगा दिया है। अच्छा हो यह पूरे देश में लागू हो। भारतीय नदियों के तट, सहायक नदियों के संगम स्थल, उद्गम व मुहाने पर सामान्यतः पवित्र माने गये। वहां या तो तीर्थ अथवा मठ–मंदिरों की बहुलता है। बड़ी संख्या में नागरिक आते हैं पूजन अर्चन व विभिन्न संस्कार करते है। मेलों, उत्सवों के भी यहां विशेष आयोजन किये जाते हैं। स्नान व कपड़े धोने में रसायनिक साबुन, जल–मल का विसर्जन, दैनिक गतिविधियों से उपजा कचरा, विभिन्न संस्कारों के करने से रह जाने वाला निर्माल्य यह सभी नदी में विसर्जित होता है। अतः आज आवश्यक है इस सम्बन्ध में नागरिकों द्वारा नदी किनारों पर किये जाने वाले व्यवहार पर योग्य नियम बने जो सरकारी, सामाजिक व धार्मिक सभी क्षेत्रों के हो।

मेला आयोजन संबंधित निकाय यह सुनिश्चित करें मेले के कारण नदी प्रवाह, तट व रेतीले तल पर अगर कोई विपरीत प्रभाव हो तो पहले उसे रोका जाये। आयोजन के कारण कोई नुकसान उसके प्राकृतिक स्वरूप पर हो तो उसकी क्षतिपूर्ति की जाये। कि मेला आयोजन से पहले ही आयोजन समिति से यह सुनिश्चित कर लिया जाना आवश्यक है कि मेले के समाप्त होने के उपरांत अपशिष्ट का कानून के अनुरूप निस्तारण मेला आयोग के द्वारा किया जाये। इसका अनुपालन निकाय का प्राथमिक उत्तरदायित्व है।

पर्यटन

भारत में सदियों से पहाड़ों की चोटी, तलहटी, नदियों के तट साधना, आराधना और विभिन्न धार्मिक आयोजनों के केन्द्र रहे हैं। समय के साथ वे सैर सपाटे के स्थान बनने लगे। राज्य व केन्द्र सरकार ने भी आय बढ़ाने के लिये इन्हें वैसे ही स्थानों के रूप में विकसित किया। तीर्थाटन अब पर्यटन में बदल गया है। वहां आमोद–प्रमोद के साधन जुटाए जाते हैं। गंदगी छोड़ी जाती है। भुटान ने इस संबंध में कठोर नियम व उसका पालन करवाकर इस दिशा में अनुकरणीय पहल की है। किन्तु भारत की विभिन्न राज्य सरकारों को तद्संबंध में नियमों के निर्धारण व उसके कठोरतापूर्वक पालन करने की दिशा में सार्थक पहल प्रारम्भ करना शेष है। कहीं इक्का–दुक्का प्रयत्न है भी तो वे फैलते प्रदूषण की तुलना में अत्यन्त अल्प हैं। इस प्रवृति पर नियंत्रण के लिए हम सरकार पर निर्भर नहीं रह सकते। इसके नियम तो स्वयं समाज को बनाने होंगे।

भारत के अधिकांश पर्यटन स्थल गैरजवाबदार व आमोद–प्रमोद के लिये घूमने वाले सैलानियों से भरे रहते हैं। होटलों और बाजारों की वहां बाढ़ आ गयी है। खण्डाला से लगाकर रानीखेत तक सभी छोटे बड़े पर्यटन केन्द्र प्लास्टिक व कचरों के ढेर में बदलने लगे हैं। जिसने धरती, वन्य जीवन व पानी को बुरी तरह प्रदूषित किया है। अतः आज पर्यटक के प्रबोधन लिये नियमों की आवश्यकता हैं।

जनजाति

भारत की अधिकांश नदियां या तो वनवासी क्षेत्रों में बहती है अथवा उसके जलग्रहण क्षेत्र का बड़ा भाग इसमें आता है। अंग्रेजों ने 1857 के पहले व बाद में स्वतंत्रता के लिये हुए विभिन्न युद्धों में यह अनुभव किया की वनों में रहने वाली विभिन्न जातियां अत्यन्त पराक्रमी, खड़तल व निर्भय है। उसको कमजोर किये बगैर इस पराये देश में राज्य संचालन संभव नहीं। अतः उन्होंने पुलिस व आईपीसी की धाराओं के माध्यम से उन्हें निःशस्त्र किया। शस्त्र रखने व लेकर चलने को अपराध माना। प्रशासन में उन्होंने इस धारणा को स्थापित किया कि वनवासी जंगलों को काटते है। वन्यजीवों को मारते है। ये जंगल के अस्तित्व के लिए खतरा है। अतः इन्हें जंगलों से बाहर खदेड़कर कमजोर कर देना चाहिए। उन्होंने वैसा ही किया। दुर्भाग्य से आजादी के बाद के शासन प्रशासन ने इसे यथावत निभाया।

वन, वन्यजीवन, वनोपज और वनवासी (अनुसूचित जनजातियों) के मध्य परस्पर रक्षक पोषक का संबंध मजबुत बने, उनका विकास हो तथा उनके हितों की रक्षा हो सके इस हेतु नियमों में परिवर्तन व नये नियमों का अर्जन आवश्यक है। क्योंकि वन नदियों के जल संचय व क्रमिक निर्गमन का अनिवार्य भाग है और वहां रहने वाला जन उसका रक्षक है।

उद्योग

अधिकांश उद्योगों की उत्पादन प्रक्रिया में जल की बड़ी भूमिका रहती है। अतः वे नदी अथवा बड़े जलस्रोतों के किनारे स्थापित होते हैं। जब तक वे सामान्य मात्रा में नदी का जल लेते हैं तब तक समस्या कम है किन्तु अनियंत्रित मात्रा में नदी से जल लेने अथवा उसे विक्रय करने के कारण जल अनुशासन भंग होता है। समस्या तब और बढ़ जाती है जब उद्योग अपना सारा कचरा (ठोस व नरम) नदी में डालते हैं। कानून के भय से वे कहीं STP प्लांट लगाते भी है तो बिजली की बचत करने के लिये उसे चलाते नहीं। सरकारी विभाग जो इन सब बातों पर निगरानी व नियंत्रण रखते हैं वे सामान्यतः उद्योगों के प्रलोभन का भाग बन जाते है।

इस संदर्भ में भारत में जल**(प्रदूषण निषेध एवं नियंत्रण)** अधिनियम, 1974 लागू जो कि अन्य पक्षों के साथ उद्योगों द्वारा अपशिष्ट नदी आदि जलस्त्रोतों में डालने का नियंत्रण करते हैं। यद्यपि इस अधिनियम का मूल्य उद्देश्य जलस्त्रोतों जैसे नदी और तालाब को प्रदूषण एवं आरोग्यजनक बनाना है, किन्तु यह अधिनियम केवल उद्योगों को अपशिष्ट जलाशयों में छोड़ने और इससे संबंधित प्रक्रिया तक ही सीमित रह गये हैं।

इसी संदर्भ में माननीय उच्चतम न्यायालय द्वारा समय–समय पर कई ऐतिहासिक मामलों में आदेश दिये गये है। उद्योगों के संबंध में ऐसा ही एक प्रकरण– **एम.सी. मेहता बनाम भारत संघ** में निर्णित हुआ। इस प्रकरण में नयायालय द्वारा चमड़ा उद्योग को गंगा नदी में असीम प्रदूषण फैलाने के लिए दणिडत किया गया और कहा गया कि प्रत्यक्ष एवं परोक्ष दोनों रूपों में यदि उद्योग नदी में अनुपचारित कचरा फेंकते हैं तो वे भारत के विभन्न कानूनों के अंतर्गत दोषी होंगे।

यदि जल प्रदूषण अधिनियम 1974, वायु अधिनियम 1981 तथा अन्य प्रदूषण विनियमन अधिनियमों को समग्र रूप से देखा जाये तो ये स्पष्ट हो जाता है कि आज भी भारत में प्रदूषण संबंधित कई पहलू अछूते रह गये हैं ।

एक बड़े संदर्भ में जहां अपशिष्ट नदी में छोड़ने का प्रश्न है, इसे उपचारित और अनुपचारित दोनों अवस्थाओं में नदी में प्रवाहित करना नदी के चिरकालिक स्वास्थ्य के लिए हानिकारक ही सिद्ध होगा। अतः किसी भी प्रकार का उपचारित और अनुपचारित अपशिष्ट जलस्त्रोतों में प्रवाहित नहीं किया जाना सुनिश्चित किया जाये।

आवश्यकता सामाजिक दबाव खड़ा करने की है। जो उद्योग नदी व तालाब में प्रदूषण फैलाते हैं उनके मालिकों को सामाजिक, आर्थिक व कानूनी रूप से दंडित करने की है। प्रदूषण नियंत्रण हेतु पर्याप्त नियम है आवश्यकता उसके कठोरता से पालन करने की है। जहां नियमों में कमी है वहां नए नियम बनाना अपेक्षित है।

कृषि

कृषि में जो क्रांति गत चालीस, पचास सालों में आयी उसने यंत्र व रसायन के प्रयोग का एक नया युग प्रारम्भ किया। एक ओर जहां इससे अल्प समय के लिये पैदावार बढ़ी वहीं दूसरी और मिट्टी को उसने स्थाई रूप से बीमार कर दिया। पैदावार की लागत बढ़ी। आता पैसा तो दिखा किन्तु जाती धरोहर नहीं दिखी। नदी व तालाबों के जलग्रहण क्षेत्रों में होने वाली रसायनिक खेती का सारा रसायन बहकर नदी में आने लगा। पहले कुछ वर्ष तो जल रचना इसे सहन कर गया किन्तु अब उसके दुष्प्रभाव दिख रहे हैं। नदी के अंदर की जैव विविधता नष्ट हो रही है। कई प्रजातियों की मछलियां, कछुए, घड़ियाल मिलना बंद हो गये हैं। यही क्रम रहा तो नदी व तालाब का जल मनुष्य के पीने योग्य तो बिलकुल नहीं शायद पशु अथवा खेती योग्य भी नहीं रहेगा।

अतः कृषि उत्पादन को बनाये रखते हुए कृषि क्षेत्र में ऐसे नियम व प्रोत्साहन के कार्यक्रम बनाये जाये जिससे जल संरचनाओं में आने वाला रसायन रुके। केन्द्रीय स्तर पर प्राकृतिक/जैविक कृषि को बढ़ावा देने हेतु रसायनिक खेती से अधिक अनुदान दिया जाय। पशुपालन व विशेषकर भारतीय नस्ल की गायों को नस्ल सुधार पालन व पोषण के कार्यों को विशेष सरंक्षण प्राप्त है।

स्वस्थ कृषि व उसके सहायक विषयों में शोध व अनुसंधान का कार्य तीव्र गति से हो जिससे समाज को दूध, ऊर्जा व खेतों को प्राकृतिक खाद ज्यादा से ज्यादा उपलब्ध हो सके।

अवैध खनन व अतिक्रमण

नदी दो प्रकार के अवैध खनन का शिकार हो रही है। एक इसमें से अनियंत्रित मात्रा में रेत निकाली जा रही है। राजनेता, प्रशासनिक अधिकारी व ठेकेदारों का गठबंधन इस काम को अंजाम देता है। यह इतना सशक्त है कि छोटे स्वयंसेवी संगठन, व्यक्ति या सामाजिक कार्यकर्ता इसे नहीं रोक सकते। कभी कोई ऐसा प्रयास भी करे तो या तो उसका स्थानान्तरण हो जाता है अथवा उसे अपनी जान से हाथ धोना पड़ता है। इससे शनैः शनैः विरोध की आवाज भी बंद हो जाती है। यही गठबंधन जलग्रहण क्षेत्र में विभिन्न प्रकार के खनिजों का अवैध खनन बड़ी मात्रा में करता है। खनन के लिए विस्फोटों का प्रयोग नदी के अंदर जल आने की भूमिगत जलधाराओं व उसकी रचना को बिगाड़ रही है।

अवैध खनन की इस आंधी के अतिरिक्त नदियों व तालाबों के जलग्रहण क्षेत्रों में अवैध निर्माण दूसरी बड़ी समस्या है। इससे तालाबों में जलागमन घटने लगता है जो अंत में भूजल स्तर को प्रभावित करता है। जहां कानून का अंधा राज है वहां तो तालाबों को भरकर अवैध कालोनियां बसाई जा रही है। यही हाल नदियों का भी है। अतः इस संम्बन्ध में स्पष्ट नियमों की आवश्यकता है साथ ही उसके पालन में कठोरता अनिवार्य है।

न्याय व कानून

नदी, तालाब, कुँएॅ बावड़ियों व अन्य मीठे पानी के जलस्रोत खारे पानी का समुद्र संसार, बादलों के रूप में उड़ता पानी, हिमशिखरों पर जमा बर्फ, हवा में विद्यमान सू{म जल जैसे सभी जल भण्डार केन्द्रों के संरक्षण, संवर्धन व प्रयोग के सम्बन्ध में भारत की कानून व न्याय व्यवस्था में स्पष्ट नियम व व्याख्या आवश्यक है। जिससे भारत के अंदर व बाहर के देशों द्वारा इसका उल्लंघन करने पर योग्य न्याय तत्काल हो सके।

विधायिका के दायित्व– भारत के संविधान की अनुसूची 7 की सूची 1 (संघ सूची) के बिन्दू क्र. 56 केन्द्र सरकार को **जल** कानून बनाने हेतु अधिकृत करता है। जनहित में यह अपेक्षित है कि जो नदियाँ अन्तर्राज्यीय हैं जैसे कि गंगा, यमुना, नर्मदा आदि इन सभी नदियों का विनियमन और विकास की जवाबदारी केन्द्र सरकार करे। बिन्दू क्र. 56 का उपयोग केन्द्र द्वारा कड़े कानून बनाने के लिए किया जा सकता है। अतः यह अनिवार्य हो चला है कि केन्द्र सरकार नदियों के जल उपयोग, संवर्धन, संरक्षण आदि के लिए एक विस्तृत कानून का निर्माण करे और इसका कड़ाई से पालन करना और करवाना सुनिश्चित करें। इस तरह के कानून की अनिवार्यता तब और बढ़ जाती है जब जलाशयों, नदी, नदी का जलग्रहण क्षेत्र आदि की कोई स्पष्ट परिभाषा भारतीय कानून में नहीं मिलती है। आवश्यकता है कि उपरोक्त सभी को एक व्यापक संदर्भ में लेकर परिभाषित किया जाए एवं कई अन्य पहलुओं जैसे कि नदी के जलग्रहण क्षेत्र में निर्माण कार्य होना एवं इसके मानक निर्धारण आदि पर भी स्पष्टता वांछनीय है।

अन्ततः ये सभी सुधार इस बात को ध्यान में रखके किये जायें कि यदि नदी का मूल स्त्रोत ही संरक्षित व विनियमित नहीं होगा तो नदी का सम्पूर्ण बहाव क्षेत्र प्रदूषण और मानवीय हस्तक्षेप से मुक्त नहीं हो सकता। उदाहरण के लिए अमरकंटक, जो कि नर्मदा का उद्गम स्थल है, उस उद्गम स्थल से लेकर एक लम्बे भाग पर निर्माण कार्य एवं अपशिष्ट निस्तारण इत्यादि के कारण नर्मदा नदी के प्रवाह एवं विस्तार में गहरा आघात देखा जा सकता है।

न्यायपालिका की पहल– सकारात्मक रूप से पिछले कुछ वर्षों में भारतीय न्यायपालिका द्वारा पर्यायवरण, विशेषकर नदी संरक्षण पर जोर दिया गया है। **सुभाष कुमार बनाम बिहार राज्य** के निर्णय में माननीय उच्चतम न्यायालय ने निर्णित कर यह स्पष्ट किया कि –

“प्रदूषण मुक्त वातावरण, जल एवं वायु के उपभोग का अधिकार संविधान के अनुच्छेद 21 (जो कि व्यक्ति को जीवन का मूल अधिकार प्रदान करता है) के अंतर्गत सम्मिलित है।”

एक अन्य मामले– तमिलनाडु राज्य बनाम हिन्द स्टोन एवं अन्य में न्यायालय ने स्पष्ट किया कि–“नदी' वन आदि संसाधन राष्ट्र की प्राकृतिक सम्पदा हैं जिनका कि उपभोग और व्यय एक ही पीढ़ी द्वारा नहीं किया जा सकता । हर पीढ़ी का अपनी उत्तरोत्तर पीढ़ी के प्रति कर्तव्य है किवह राष्ट्र की प्राकृतिक सम्पदा का संरक्षण एवं विकास यथासंभव रूप से करे। यह सम्पूर्ण मानव जामि के हित में है।”

पर्यावरण का लोक न्यास सिद्धदांत– न्यायपालिका द्वारा इस सिद्धदांत का प्रतिपादन करके राज्य पर प्रभार डाला गया कि वह प्राकृतिक सम्पदा , जिसमें नदियाँ भी सम्मिलित हैं, का संरक्षण जनता के न्यासी(जतनेजमम) की तरह करेगा। एम.सी. मेहता बनाम कमलनाथ के मामले में न्यायालय ने यह सिद्धांत दिया कि नदी, जलाशय आदि प्राकृतिक सम्पदाओं पर किसी व्यक्ति विशेष का अधिकार नहीं हो सकता एवं यह राज्य एक लोकन्यासी(च्नइसपब जतनेजमम) की तरह इसका सम्यक उपयोग तथा उपभोग सुनिश्चित करेगा।

पड़ोसी देश व शेष विश्व

विश्व स्तर पर विकसित देशों में नदी व अन्य जलस्रोतो के संरक्षण हेतु पर्याप्त नियम हैं। वहा का समाज और सरकार उसका कठोरता से पालन करते हैं। इसी का परिणाम है कि स्वच्छता व संरक्षण का साथ पाकर वहां के जलस्रोत स्वस्थ और सुंदर है। किन्तु अधिकांश विकासशील, अर्द्धविकसित व पिछड़े देशों में यह कम ज्यादा मात्रा में नियम व क्रियान्वयन दोनों स्तर पर कमजोर तंत्र का हिस्सा है। आवश्यकता वैश्विक स्तर पर इस दिशा में कठोर पहल करने की है। पृथ्वी पर स्थित सभी प्रकार के जलस्रोत वैश्विक धरोहर है। किसी देश में होने से वह देश उस पर अपना अधिकार रखता है किन्तु उसके प्रदूषित होने अथवा स्वस्थ होने पर उससे उपजने वाला प्रभाव वैश्विक होता है। वह विश्व पर्यावरण पर अच्छा अथवा बुरा प्रभाव डालता है। अतः आज आवश्यकता सयुक्त राष्ट्र संघ व ऐसी ही अन्य उपमहाद्विपीय या अर्न्तमहाद्विपीय संस्थाओं के द्वारा अपने सभी सदस्य देशों में लागू होने योग्य नियमों के निर्धारण व क्रियान्वयन में महत्वपूर्ण भूमिका निभायें।

आवश्यकता हो तो जलस्रोतों के स्वास्थ्य मूल्यांकन, संरक्षण योजनाओं के निर्माण, क्रियान्वयन व शोध कार्यों में आवश्यक वित्तिय पोषण करने की भी है। ऐसा करते हुए विकसित देश इन कार्यों को व्यापार व जासूसी करने का माध्यम न बनने दे। सारे प्रयत्न प्रामाणिकता से जलस्रोतों के संरक्षण व संवर्धन तक सीमित हो।

जो नदियां अथवा जलाशय एक या एक से अधिक देशों की सीमाओं को छूते हों तो ऐसे सभी स्रोतों के लिए वैश्विक स्तर पर सामंजस्य व सर्व स्वीकार्य नियमों का निर्धारण आज की आवश्यकता है। जहां कमियाँ हों वहां नए नियम बनाये जाये। इन्हें बनाने में संबंधित देशों की राजनैतिक, प्रशासनिक व सैन्य अधिकारियों की आपसी समझ भी विशेष महत्व रखती है। ये शक्तियां यदि नदियों, बांधों व जलाशयों को सामरिक महत्व की वस्तुओं के रूप में देखेगी। वैसी ही उन पर योजनाएं बनायेंगी व उसका क्रियान्वयन करेंगी तो निश्चित ही वह अशांति को उत्पन्न करेंगी। कालान्तर में वे उनहीं के विनाश का माध्यम भी बन सकती है। भारत की कई महत्वपूर्ण नदियाँ पड़ोसी देशों से होकर भारत में आ रहीं हैं और कई नदियां भारत से होकर पड़ोसी देशों में जा रहीं हैं। समय रहते भारत सरकार को वैश्विक नियमों के परिप्रे{य में स्वयं के नियम कानूनों का निर्धारण कर लेना चाहिए जिससे विवाद उत्पन्न होने की दशा में देशज काननू की प्रधानता स्वीकार्य हो सके।

पर्यावरण व जलवायु परिवर्तन

विश्व में तेज गति से जलवायु परिवर्तन हो रहा है। विकास के जिस ढांचे को विश्व ने मानक माना है। इसके अच्छे परिणामों के साथ बुरे परिणाम भी अब दिखाई देने लगे हैं। सुविकास के अच्छे परिणाम जहां मनुष्य के सुख में बढ़ोतरी का कारण बने हैं वहीं कुविकास मानव व प्रकृति के अस्तित्व को मिटाने का कारण बन रहे हैं। नदियों और अन्य जलस्रोतों पर इसका परस्पर प्रभाव पड़ना प्रारंभ हो गया है। धरती का औसत तापमान बढ़ने से दोनों ध्रुवों पर बर्फ के पिघलने की गति में असाधारण तेजी आयी है। जिससे जहां एक ओर जल का संतुलन गड़बड़ा रहा है वहीं दूसरी ओर समुद्र का जल स्तर भी बढ़ रहा है। जो आने वाले कुछ वर्षों में खतरे के निशान को पार कर जाएगा। बर्फीली पहाड़ियों और हिमनद से निकलने वाली नदियों का अस्तित्व भी बर्फ के ज्यादा पिघलने और कम जमने के कारण संकट में आ रहा है। निरन्तर बढ़ता पर्यावरण प्रदूषण जल भण्डारों के जैव विविधता के संसार को खराब कर रहा है।

पर्यावरण में बढ़ते प्रदूषण और जलवायु में होने वाले परिवर्तनों को नियंत्रित करने के लिए जहां एक और वैश्विक नियम व उपभोग में अनुशासन जैसे बिन्दुओं के सहमति केन्द्रों तक जल्दी से जल्दी पहुंचाना आवश्यक है। भारत को इस सम्बन्ध में अपनी नीति व नियमों का निर्धारण व्यापक रूप में कर उसका परिपालन प्रारंभ कर देना चाहिए। अतः इस विषय में भविष्य की समस्याओं और सम्भावनाओं को ध्यान में रखकर योग्य नियमावली बनाना समय की मांग है।

1-AIR 1991 SC 420   2-AIR 1981 SC 711   3-(1997) 1 SCC 388

नेतृत्व

यह सब तभी सम्भव है जब पंच से प्रधानमंत्री तक, पंचायत सचिव से प्रधान सचिव तक सभी स्तरों पर नेतृत्व करने वाले नदी, जव व पर्यावरण के विषय को समझकर अपनी नीतियाँ बनायें। सामाजिक, धार्मिक, व्यावसायिक व अन्य क्षेत्रों में नेतृत्व करने वाले भी अपने–अपने क्षेत्र में स्वस्थ समाज के साथ निर्णय लें व उसका कियान्वयन करें। यह नदी व पर्यावरण संरक्षण की अनिवार्य आवश्यकता है।

अनुभवियों का अनुभव कहता है कि 90 प्रतिशत नेतृत्व सलाह, समझ व सम्बन्ध से विषय की ठीक समझ पा सकता है। केवल 10 प्रतिशत में ही सुधार की संभावना नहीं होती। अतः अन्त में वे परिवर्तन से ही ठीक होती है। गांव के पंच–सरपंच हो या देश का प्रधानमंत्री अथवा उसका मंत्रिमण्डल। ग्राम पंचायत का सचिव या पटवारी हो अथवा केन्द्रीय कैबिनेट सचिव। व्यक्तिगत स्तर पर हम सभी सारे विषयों के विशेषज्ञ नहीं हो सकते। हर एक का अध्ययन कुछ विषयों में ही हो सकता है। शेष सभी विषयों में प्रबोधन व विषय प्रकाश की आवश्यकता रहती है। इसका विषय के जानकार लोगों ने धैर्य व उल्हाने के बगैर पूर्ति करने का सतत् प्रयत्न करना चाहिए। यही गांधी मार्ग है और व्यापक रूप से कहे तो यही भारतीय पथ है।

नेतृत्व के अंदर नदी व अन्य जलस्रोतों के सम्बन्ध में प्रबोधन के चार चरण हो सकते हैं–

(1) दृष्टि का सृजन (2) विषय की समझ

(3) धरोहर भाव की धारणा। (4) कार्य–संस्कृति का विकास

(1) दृष्टि का सृजन

दृष्टि व्यवहार का कारण है। व्यक्ति परस्पर एक दूसरे को किस दृष्टि से देखते हैं ? यह उनके बीच सम्बन्ध व व्यवहार का कारण बनता है। नेतृत्वकर्ता नदियों, जलाशयों, जलग्रहण क्षेत्रों व अन्य जलस्रोतों की ओर किस दृष्टि से देखता है वह उनके व्यवहार का जन्म देता है। बहती नदी व उसके जल का पूरा उपयोग हमी को करना है। उसकी एक भी बूंद बहकर अगले गांव, बस्ती या राज्य तक न जाए, चाहे फिर हमें उसे निरर्थक ही यहां–वहां क्यों न बहा देना पड़े। इस अवस्था में यह जल इकाईयां नेतृत्वकर्ता के लिए एक वॉटर बॉडी अर्थात उपभोग की वस्तु है। दूसरी दृष्टि में नेतृत्व नदी व तालाबों को धरोहर मानना व उसका ध्यान रखना है यह स्वस्थ दृष्टि है। इसमें वह अपनी आवश्यकता को पूरा कर उसे आगे बहने देता है जिससे दूसरे भी इसका उपयोग कर सके। यह सहअस्तित्व की परिपक्व दृष्टि है। नेतृत्वकर्ता अगर इस दृष्टि को स्वीकारेंगे तो नदी व उससे अपना पोषण करने वाले विभिन्न जनसमूह सभी सुजल व सुफल पा सकेंगे। अन्यथा वर्ग संघर्ष तो दोष दृष्टि का अनिवार्य सहायक उत्पादन (By Product) है ही।

(2) विषय की समझ

स्वस्थ दृष्टि से ही विषय की समझ प्रारम्भ होती है। आवश्यक ज्ञान पाकर वह विकसित होती है। नेतृत्वकर्ता को निर्णय पर पहुंचने व उसे क्रियान्वित करने में इसकी बड़ी भूमिका होती है। अपरिपक्व समझ अथवा विषय का ज्ञान मुर्खतापूर्ण निर्णयों को जन्म देता है। कहावत भी है कि – ''अनुभव ज्ञान को बढ़ाता है किन्तु किसी भी मूर्खता को कम नहीं कर सकता हैं।'' सभी निर्णयों का आधार विषय की समझ है अतः विभिन्न स्तरों पर नेतृत्व कर रहे व्यक्तियों में जल, नदी, तालाब, छोटे–बड़े जलस्रोत, जलग्रहण क्षेत्र, जंगल व भूमि जैसे विषयों में समझ का विकास करना सर्वकालीन अनिवार्य कार्य है।

(3) कार्य संस्कृति का विकास

सभी प्रकार के परिणामों का कारण हैं। कार्य की समझ व प्रयत्न है। अधूरी समझ अस्वस्थ कार्य–संस्कृति का कारण है। संगठन हो या जनसंघर्ष, सरकार हो या सेना सेवा कार्य हो अथवा सद्भावना मिशन सभी को करने में जिस प्रकार की कार्यशैली का प्रयोग हो रहा होता है। वही कालान्तर में संस्कृति बन जाती है। वह सफलता और असफलता का कारण भी बनती है। नदी व अन्य सभी जल रचनाओं को संरक्षित व संवंधित करना है तो हमें सफल कार्यपद्धति को स्वीकारना होगा। अन्यथा भ्रष्टाचार अकर्मण्यता व लेटलतीफी जैसे रोग अगर उसमें रहेंगे तो जलस्रोतों को मिटने से कोई रोक नहीं सकता। जैसे की विश्व पर्यावरण सम्मलनों में कई देश कहते है कि धरती पर कार्बन उत्सर्जन कम करना है किन्तु मेरे देश में वह कम नहीं होगा। इस प्रकार की सोच व कार्यसंस्कृति कार्य की असफलता का अचुक मंत्र है।

(4) धरोहर भाव का विकास

नेतृत्व जब यह मानता है कि यह जंगल, पहाड़, नदियां व तालाब हमारी पीढ़ी को अपने पूर्वजों की ओर से धरोहर के रूप में मिले हैं। इनका रक्षण व पोषण हमारी जवाबदारी है। क्योंकि यह धरोहर है और हमें जैसी प्राप्त हुई है उससे ज्यादा अच्छे रूप में इसे आने वाली पीढ़ियों को देना है। मेरी संतान जब इन खेतों में काम करें तब उसे स्वस्थ भूमि व जलस्रोत देना मेरा कर्तव्य है यह भाव अगर है तो उससे हमारे व्यवहार के तरीके भी वैसे ही विकसीत होंगे।

जो इसे धरोहर नहीं मानते वे अपने जीवन काल में ही इसका उपभोग कर लेना चाहते हैं। अति शोषण उन प्राकृतिक स्रोतों की मृत्यु का कारण बनते हैं। अतः यह आवश्यक है कि हर नेतृत्वकर्ता अपने–अपने स्थान पर इन प्राकृतिक संसाधनों के साथ व्यवहार करते समय धरोहर भाव को रखे, जिससे आनेवाली पीढ़ी उसे अच्छे व स्वस्थ स्वरूप में प्राप्त कर सकें।

सामाजिक, राजनैतिक, धार्मिक व प्रशासनिक (सम्पूर्ण सरकारी तंत्र) सभी प्रकार के नेतृत्वकर्ताओं से यह अपेक्षा की जाती है कि वे निर्णय लेने से पूर्व निर्णय से प्रभावित होने वाले सभी पक्षों को सुने। विशेषज्ञों से सलाह लें। आवश्यक प्रतीत होने पर निर्णयों में परिवर्तन को तैयार रहे। कार्यपद्धति में एक सीमा तक लोच कमजोरी नहीं उसकी मजबूती है। जो कार्यदोष को कम करती है। सभी पक्षों से चर्चा व संवाद के द्वार खुले रखें। हर कठोर इस्पात आकार लेने से पहले पिघलता है। यह सिद्धान्त सार्वत्रिक लागू होना है। जहां योजना निर्माण, क्रियान्वयन व मूल्यांकन में इसका पालन होता है वहां सफलता निश्चित होती है।

सुझाव एवं चुनौतियां

1. नदी जलाशयों व छोटे–बड़े जलस्रोतों के संरक्षण, संवर्धन हेतु उपयुक्त कानून बने। उसका पालन करवाने वाली इकाइयों की जवाबदारियां सुनिश्चित हो। असफल रहने या गैर जिम्मेदाराना व्यवहार करने पर व्यक्ति विशेष या समूह को दण्ड का प्रावधान हो।
2. जहां नये नियम बनाने की आवश्यकता हो वहां ग्राम पंचायत, नगरीय निकायों, राज्य व केन्द्र अपने–अपने स्तर पर नियमों को बनाये व अपने तंत्र से उसका पालन सुनिश्चित करवाये।
3. प्रत्येक नदी (सम्पूर्ण जलग्रहण क्षेत्र के साथ) का प्रति वर्ष स्वास्थ्य सूचकांक बने। उसके मानक नदी स्वास्थ्य के विभिन्न पक्षों को अभिव्यक्त करते हो। नदी के स्वास्थ्य में गिरावट अनुभव होने पर उसके कारण ढुंढ़े जाये व जवाबदेही निश्चित हो। स्वास्थ्य में सुधार या अच्छा होने पर उसके लिए उत्तरदायी व्यक्ति या व्यवस्था को पुरुस्कृत भी किया जाए।
4. नदियों की देख–रेख की जवाबदेही स्थानीय निकायों से लेकर केन्द्र तक सभी पर रहे। एक दूसरे पर उसे टालने से कार्यसिद्धि सम्भव नहीं।
5. समाज में जल अनुशासन खड़ा करने का भगीरथ प्रयत्न हो। जो केवल विज्ञापनों और भाषणों तक सीमित न रहकर व्यवहार व निर्णय में भी दिखाई दे। जिससे आगामी पीढ़ी उसका पालन बचपन से ही कर सके।
6. नगरीय रचनाओं में जलसंचय, वितरण व प्रयोग में जो साधन अपनाये जाते हैं– जैसे नल, वाशबेसिन, कमोड़, यूरिनल, रसोई में सिंक, सफाई के रसायन, फर्श की साफ–सफाई, में एसीड़, बागवानी, कार व वाहनों की धुलाई, सार्वजनिक नल व वितरण तंत्र में लीकेज इत्यादि छोटी–बड़ी सभी साधन व रचनाएं पुनः विचार चाहती है। इसकी डिजाईन में अनुसंधान हो जिससे भविष्य में प्रयोग होने वाली ये वस्तु एवं व्यवस्थाएं न्यूनतम पानी से अपना कार्य पूर्ण कर सके।
7. नदियां अन्य जलस्रोतों से अथवा भूमि के अंदर से जल निकाल कर उससे लाभ प्राप्त करने वाले व्यक्ति, समूह, संस्था अथवा सरकार जो भी जल का उपयोग करे व उस जलस्रोत के जल की मात्रा

के अनुपात में उसकी जवाबदारी संरक्षण में अपनी भूमिका निभाये। इस सम्बन्ध में लापरवाही की अवस्था में कठोर दंड का प्रावधन हो।

8. पानी का एक से दूसरे स्थान पर स्थानान्तरण जहां अनिवार्य हो वहीं किया जाए। पहला प्रयत्न स्थानीय वर्षा व अन्य उपलब्ध जल को संग्रहित करने पर हो। स्थानीय उपयोगकर्ताओं में जल अनुशासन खड़ा किया जाए। इसके बाद भी कमी होने पर जल स्थानान्तरण पर विचार व कार्य हो। अजन्म प्रमोद व प्रचुरता के लिए जल स्थानान्तरण प्रकृति में व्यभिचार हैं।

9. सरकार और समाज सभी को अपने कार्यों निर्णयों का सतत् मूल्यांकन करते रहना चाहिए। जिन बांधों व सिंचाई योजनाओं को बने हुए 25 वर्ष से अधिक हो गये हैं। उनका लाभ–हानि खाता (Profit & Loss A/c) बनाकर योजना के प्रारम्भ में किये गये दावों का मूल्यांकन कर भविष्य की दिशा तय करना।

10. छोटी व लघु सिंचाई योजनाओं और पानी रोकने के उपक्रमों को सामाजिक आन्दोलन बनाना।

11. जल अनुशासन व जल प्रबंधन के सफल प्रयोगों का प्रचार–प्रसार।

12. समुद्र किनारे के औद्योगिक व नगरीय रचनाओं द्वारा समुद्र व उसकी खाड़ियों में डाले जा रहे प्रदूषण पर कठोरता से रोक। इस सम्बन्ध में अंतर्राष्ट्रीय नियमों का पालन। भारत में भी आवश्यक नीति–नियमों का निर्धारण।

13. हिम शिखरों की बर्फ व हिम नदी के संरक्षण हेतु नए नियमों का निर्धारण।

14. समाज के साथ सरकारों के विभिन्न आयामों व स्तरों पर जल विषय की उचित समझ के विकास हेतु विभिन्न प्रकार के प्रयत्न।

भविष्य की चुनौतियां

1. भारत की अधिकांश नदियों के अस्तित्व पर खतरे के बादल मंडरा रहे हैं। यह कोई अतिशयोक्ति नहीं है। आये दिन नई–नई किस्म की चुनौतियां खड़ी हो रही हैं।

2. बढ़ती आबादी के दबाव में नदियों के पानी का उपयोग बढ़ गया है। विकास के नए मॉडल में हरेक वस्तु के उत्पादन व उपयोग में पानी का बेतहाशा प्रयोग हो रहा है। जो अनियंत्रण की सीमा पार कर गया है।

3. नदी, तालाब व छोटे–बड़े जलस्रोतों पर स्वामित्व का संघर्ष।

4. जल हेतु रावण प्रयत्न (किसी दूसरे का जल धोखे से चुराकर स्वयं के स्वामित्व में लाने का प्रयत्न रावण प्रयत्न है)। के प्रचलन में बढ़ोत्तरी।

5. समाज व अन्य उपभोक्ताओं में जल अनुशासन का घोर अभाव। स्वयं के उपभोग तक केन्द्रित दृष्टि की प्रधानता।

6. उड़ते जल (बादल) को अपनी दिशा में मोड़ना। उसकी चोरी करना यह निकट भविष्य में प्रारम्भ हो सकता है।

7. सूक्ष्म जल (वातावरण में विद्यमान) को सोखकर चुराने के भी प्रयत्न प्रारम्भ होंगे।

8. नदी संरक्षण, संवर्धन व अनुसंधान के क्षेत्र में पर्याप्त प्रयत्नों का अभाव।